International Journal of Education and Science Research Review
ISSN 2348-6457
www.ijesrr.org
October- 2018, Volume-5, Issue-5
Email- editor@ijesrr.org

कालिदास के साहित्य में निहित शैक्षिक तत्त्वों का वर्तमान समय में प्रासंगिकता

डॉ0 बृजभूषण मिश्र
वैशाली इन्स्टीट्यूट ऑफ एजूकेशन एण्ड टेक्नालॉजी
शाहपुर तिवारी, लालगंज, वैशाली (बिहार)

संस्कृत वांगमय की अक्षुण्ण परम्परा में अनेक रचनाकारों का नाम ससम्मान लिया जाता है यद्यपि इस वांगमय को चतुर्दिक प्रसारित करने एवं विकसित करने में अनेक विद्वानों ने अपनी प्रतिभा को समर्पित कर दिया तथापि कुछ ऐसे भी साहित्यकार हुए जो इस वांगमय के साथ स्वयं भी अमर हो गये। इन्हीं सुप्रतिष्ठित विद्वत्कुल में कविकुलगुरु कालिदास का नाम यशस्खे रूप म सुविख्यात है। संस्कृत साहित्य के काव्य एवं नाटक दोनों क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा का यशोगान करते हुए इस महान रचनाकार ने सम्पूर्ण विश्व को अपने सन्देश एवं प्रचार से सम्पूर्ण विश्व को नव चेतना से अलंकृत किया। वास्तव में यह महाकवि संस्कृत साहित्य की महान् विभूति हैं इनकी रचनाओं में भारतीय संस्कृति पूर्णतया प्रतिबिम्बित होती है। काव्य के साथ–साथ नाट्ययकला के क्षेत्र में जिस नूतन प्रवाह को कालिदास ने प्रस्तुत किया है वह युग–युग तक मानव को स्पन्दित व अनुप्राणित करता रहेगा। उन्होंने नाटकों में राष्ट्रीय चेतना, लोकादर्श, जन सामान्य का चित्रण, अध्यात्म व नैतिक मूल्यों का प्रणयन जिस श्रेष्ठता से किया उससे संस्कृत के काव्य एवं नाटक क्षेत्र को एक नवीन आयाम प्राप्त हुआ।

कालिदास का जीवन काल काफी विवादास्पद रहा है किन्तु विविध शास्त्रकारों, इतिहासकारों, अन्य प्रदत्त प्रमाणों के विश्लेषण व कालिदास की रचनाओं में शौर्य, विलास, वैभव व कुछ निश्चित प्रतिमानों व मर्यादाओं के प्रतिस्थापन के परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि कालिदास चौथी शताब्दी के उत्तार्ध में, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की राजसभा के नवरत्नों में से एक थे।

कालिदास का साहित्य तत्कालीन आध्यात्मिक दार्शनिक भारतीय चिन्तन धारा से ओत–प्रोत है, फलतः इनके रचनाओं की सांस्कृतिक धारा शान्त एवं संतुलित व्यवस्था के अन्तर्गत समाहित है। विविध वृत्तान्तों वर्णनों का सफल चित्रण कालिदास के रचनाओं की परिणति रही है।

महाकवि कालिदास विरचित काव्यात्मक रचनाओं में 'कुमार सम्भव, मेघदूत तथा रघुवंश' हैं। तथा प्राप्त नाटकों में मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम् तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् का नाम प्रमुख है। इनमें मालविकाग्निमित्रम् प्रथम नाट्य रचना मानी जाती है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाट्यकला की दृष्टि से कवि की प्रौढ़ व अन्तिम रचना है, अन्य किसी नाटक का उल्लेख नहीं प्राप्त होता है।

कालिदास की लेखनी सरस्वती की वाणी थी। इनके काव्य ग्रन्थों एवं नाटकों में कथानकों का जिस सूक्ष्मता तथा प्रवीणता से विवेचन किया गया है वह लेखक के कौशल को विज्ञापित करता है। चित्र, नृत्य, संगीत का समावेश इस तरह है कि उससे रचनाओं का स्वरूप और भी अधिक श्रेष्ठ हो गया है।

कालिदास नाटक को जीवन का उपदेश ही नहीं वरन् मानव जीवन का अध्ययन मानते थे। नृत्य, संगीत, चित्र के प्रति अलग–अलग व्यक्तियों की विभिन्न रूचि के कारण ये सभी लोगों को आकृष्ट नहीं करते, जबकि नाटक सम्पूण लोक व्यवहार को समेटने के कारण बहुसंख्यक लोगों को आकर्षित करते हैं। मालविकाग्निमित्रम् में गणदास ने कहा है–

"त्रैगुण्योद्भवमय लोक चरितं नानारसं दृश्यते।
नाट्यं भिन्नरूचिर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधकम्।।

कालिदास ने पुरानी वर्णनात्मक शैली का परित्याग कर कथावस्तु को सम्पूर्ण कौशल से नितान्त कलात्मक ढंग से सजाया संवारा है जिसमें चित्रण को प्रधानता प्राप्त है।

मालविकाग्निमित्रम् में राजा अग्निमित्र का मालविका से प्रेम, रनिवासों में पनपती परस्पर ईर्ष्यायें एवं विदूषक का चातुर्य कौशल चित्रित किया गया है। कथावस्तु में तथा भावों एवं वर्णनों का तारतम्य है तथापि प्रवाह परिलक्षित नहीं होता। फिर भी कालिदास जिस भाव को प्रदर्शित करना चाहते हैं उसमें बहुत कुछ रूप में सफल रहे हैं। इसी क्रम में विक्रमोर्वशीयम् में इसकी न्यूनता को लेखक ने दूर करने का पूरा प्रयास किया है। पात्रों का चयन तथा मानवीय

दैवीय सम्मिरण उपस्थापित कर नाटक की कथावस्तु को अत्यन्त रोचक स्वरूप प्रदान किया है। इसमें व्यापक मानव प्रकृति की स्थिति विद्यमान है।

नाटक में अभिज्ञानशाकुन्तलम् कालिदास की सर्वोत्कृष्ट रचना है जिसमें कलात्मकता, प्रकृति सौन्दर्यता, चित्रण वैशिष्ट्य अपने चरमोत्कष पर है – ''नाट्यशास्त्र के विधान के अनुरूप ही कालिदास ने शाकुन्तल व विक्रमोवर्शीयम् में दुःखान्त घटना को निर्वहण संधि में सुखान्त बना दिया है और भरत के इस नियम का अपनी रचनाओं में पालन किया है कि निर्वहण संधि में अद्भुत रस का उद्रेग आवश्यक है।''

फिर भी नाट्यशास्त्र अथवा किसी भी शास्त्रीय मानदण्ड का अक्षरशः अनुसरण कालिदास की सार्वभौम प्रतिभा के लिये कदापि सम्भव नहीं होता। इनके नाटकों में अभ्यन्तरीय प्रतिभा विद्यमान है जो सम्पूर्ण नाट्यवस्तु को अधिाशासित करती है।

के0एस0 रामास्वामी ने कहा है – ''कालिदास की रचनाओं में मानव मन की शाश्वत अभिलाषाओं तथा उद्वेगों का चित्रण इतना सटीक, सजीव तथा सर्वांगपूर्ण है कि उसका प्रभाव सृष्टि पर चिरकाल तक जीवित रहेगा तथा सभी कालों, सभी देशों तथा सभी के हृदयों को आवर्जित करता रहेगा।''

कालिदास के विचार एवं आदर्श तत्कालीन मान्यताओं से प्रभावित हैं और उनके चित्रण द्वारा उन्होंने लोकजीवन को संघटित व परिपुष्ट करने का प्रयास किया है। उनकी रचनाओं में जीवन, शिक्षा, समाज, राज्यतन्त्र, नारीत्व, पुरुषत्व विभिन्न विषयों पर विचार व आदर्श की अभिव्यक्ति हुई है।

कालिदास के समय में शिक्षा गुरुकुलों व आश्रमों में होती थी। कण्व, मारीच एवं महर्षि व्यवन ऋषि के आश्रम आदि शिक्षा देने का कार्य करते थे। कालिदास उसी शिक्षा को सर्वश्रेष्ठ मानते थे जिसमें गुणों के साथ शिक्षा देने की योग्यता भी हो। जिस प्रकार अग्नि में सोना डालने से काला नहीं होता वैसे ही सच्ची शिक्षा परीक्षा काल में मन्द नहीं होती थी। गुरु की आज्ञा सहज ढंग से पालनीय थी तथा अध्ययन के समय ब्रह्मचर्य आवश्यक था।

कालिदास बालकों के मस्तिष्क को शून्य नहीं मानते थे बल्कि उनके मत से बालक जन्म के समय उन प्रवृत्तियों, रूचियों व क्षमताओं को अपने भीतर लिये रहता है जो उसने पूर्व जन्म में गृहीत की थीं।

कालिदास जीवन में आश्रम धर्म को महत्व देते थे। उन्होंने ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व सन्यास की जीवन दशाओं का अत्यन्त सम्मान के साथ वर्णन किया है।

आध्यात्मिक जीवन के लिये यज्ञ, दान, तप के साधन वर्णित किये गये हैं। कालिदास ने मालविकाग्निमित्रम् में अश्वघोष के रूप की महिला को स्पष्ट किया है। इसी अंक में दान का भी वर्णन किया गया है। तपस्या की महिमा का तो अनेक स्थलों पर चित्रण प्राप्त होता है। शाकुन्तल के प्रथम अंक में राजा दुष्यन्त कहता है, आओ हम लोग पवित्र आश्रम के दर्शन से अपने को पुनीत करें। ''पुण्याश्रम दर्शनेन तावदात्मानं पुनीमहे।'' शाकुन्तल में तपस्वियों की महिमा का वर्णन यूं किया गया है–

शम प्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मक मस्तितेजः।
स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्तास्तदन्यते जोऽभिभवाद्वयन्ति।।

सामाजिक जीवन को उन्नति के लिये कालिदास वर्णाश्रम धर्म के समर्थक है। उनकी रचनाओं में वर्णों व आश्रमों की व्यवस्था भारतीय संस्कृति व सामाजिक जीवन के अनुपालन के निमित्त की गई है। सहजं किल यद्विनिन्दितं न खलु सत्कर्म विवर्णनीयम।'' कालिदास ने सभी वर्णों के पूर्ण सहयोग व सद्भाव के साथ परस्पर कर्तव्य के आधार पर राष्ट्र की समृद्धि का समर्थन किया है। वे समाज व अधिकारों की अपेक्षा कर्तव्यपालन को अधिक महत्व प्रदान करते थे।

इस प्रकार कालिदास जीवन में धर्ज, अर्थ, काम, मोक्ष के समर्थक थे। कालिदास बालिकाओं व नारियों के प्रति सम्मानजनक दृष्टिकोंण रखते थे। वे नारियों की शिक्षा के समर्थक थे। उनकी नायिकायें शिक्षित व उनके व्यक्तित्व में चरित्र के सभी गुण विद्यमान थे। मालविका गीत व नृत्य में परम् कुशल थी और सुन्दरी के साथ ललित विज्ञान, विधान में भी दक्ष थी।

शकुन्तला को महर्षि कण्व के आश्रम मे जो प्यार मिला था वह प्रत्येक भारतीय कुटुम्ब के लिये अनुकरणीय है। कण्व ऋषि शकुन्तला के आसन्न वियोग पर गहरी वेदना के बावजूद उसे दुष्यन्त के पास भेजकर महान् सुख का अनुभव करते हैं।

कालिदास ने विवाह व मातृत्व को नारी का कर्तव्य ही नहीं वरन् आभूषण माना है। दाम्पत्य प्रेम व आनन्द का वर्णन कवि ने बहुत ही तन्मयता पूर्वक किया है। शकुन्तला को कण्व ऋषि द्वारा विदाई के अवसर पर दिये गये संदेश में भारतीय लोकादर्श की अभिव्यक्ति, हर काल के लिये शाश्वत है –

शुश्रूषस्व गुरुकुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
प्रत्युर्ष्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्टं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्यावयः।।

नारी की यही श्रद्धा पुरुष की क्रिया से संयुक्त होकर जब पुत्र रूपी धन की सृष्टि करता है तो सभी स्त्री–पुरुष का जीवन धन्य हो जाता है।

दिष्टया शकुन्तला साध्वी सदपत्यमिदं भवान्।
श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति त्रितयं तत्सभागतम्।।

कालिदास ने राजनीति के विषय में भी अपने विचार प्रकट किये हैं। वे राजकुमारों को इस तरह शिक्षित करना चाहते थे जिससे वे सम्पूर्ण नागरिक व सामरिक विज्ञानों में प्रवीण बन सकें। राजाओं के लिये जो सद्गुण बताये गये हैं वे सामान्य व्यक्ति के लिये भी भूषण स्वरूप हैं। उन्होंने राजाओं को निर्भीक, स्वस्थ, धर्मानुयायी, लोभरहित, अनासक्ति जीवन उपभोग करने वाला, विद्वान्, शक्तिमान पर दयालु, दानशील, त्यागी, विद्याओं में पारंगत, अर्थ व काम को भी धार्मिक दृष्टिकोंण से देखने वाला अपनी कृतियों में चित्रित किया है।

व्यक्तिगत गुणों के समान ही कालिदास राजाओं में सामाजिक गुणों का विकास आवश्यक मानते थे। शाकुन्तलम् के पांचवें अंक में राजा के कठिन दायित्व का वर्णन है। ''राजा के जीवन में विश्राम कहाँ। सूर्य एक ही बार घाड़े जोते निरन्तर चला आ रहा है जिस प्रकार शेषनाग पृथ्वी का भार वहन करता है उसी प्रकार राजा भी प्रजा के कार्य में निरन्तर लगा रहता है। राजा बनकर प्रतिष्ठा पा लेने से मन की साध तो पूरी होती है पर राज्यपालन में असीम कष्ट सहने पड़ने हैं – सच्चे राजा राज्य की भलाइ में वैसे ही व्यस्त रहते हैं जैसे वृक्ष स्वयं कड़ी धूप सहनकर दूसरों को छाया देते हैं।''

इस प्रकार कालिदास ने अपने नाटकों में राजा के तीन कार्यों को चित्रित किया है, राष्ट्रीय शिक्षा, राष्ट्रीय सुरक्षा व राष्ट्र का आर्थिक समुन्नयन।
शाकुन्तल के भरत वाक्य में जीवन के श्रेष्ठ आदर्श के परिप्रेक्ष्य में अपने अभीष्ट राजनीतिक आदर्श की अभिव्यक्ति कवि ने निम्न शब्दों में की है –

प्रवर्तताः प्रकृति हिताय पार्थिवः
सरस्वती श्रुति महती महीयषाम्।
ममापि च क्षपयतु नील लोहितः
पुनर्भवं परिणत शक्तिरात्म्भू।।

कालिदास सच्चे पुरुषत्व के लिये प्रेम को एक परिष्कारिणी ऊर्ध्वगामिनी शक्ति के रूप में मानते हैं पर वह प्रेम मनुष्य को तभी उच्च देवत्व के धरातल पर उठाता है जब वह वासना से मुक्त हो और कर्तव्यपरायणता की ओर उन्मुख हो जाता है।

जीवन का समस्त संघर्ष व अवसाद उनके नाटकों में कलात्मकता, उपलब्धि की स्थिर शान्ति तथा गरिमा में प्रतिफलित हुआ है।

रवीन्द्र नाथ टैगोर के सुन्दर शब्दों में ''कालिदास तुम्हें भी जीवन की कठोर यथार्थता के कटु अनुभव हुए होंगे, पर सब होने पर भी उन सबके ऊपर तुम्हारा सौन्दर्यकमल आनन्द के सूर्य की ओर उन्मुख होकर निर्लिप्त, निर्मल रूप में खिला है। उसमें कहीं दुःख दैन्य व दुर्दिन के अनुभवों का कोई चिह्न नहीं है। जीवन मंथन से उत्पन्न विष को तुमने स्वयं पान किया है और मंथन के फलस्वरूप जो अमृत निकला उसे तुम समग्र संसार को दान कर दिये हो।

कालिदास ने प्रकृति सौन्दर्य का वर्णन नितान्त आकर्षक व तन्मयतापूर्वक किया है। कालिदास ने अपने नाटकों में मनुष्य व प्रकृति के बीच तादात्म्य स्थापित करने का सफल प्रयत्न किया है। प्रकृति के प्रति मनुष्य का प्रेम प्रदर्शित करते–करते उनका अन्तर्मन भाव मनुष्य के प्रति प्रकृति का प्रेम प्रदर्शित करने लगता है।

कालिदास की सबसे बड़ी उपलब्धि जोवन के प्रति सुनिश्चित योजना की कल्पना है जिसमें मनुष्य के शाश्वत संघर्षों व अभिलाषाओं के पूरा होने की सम्यक् व्यवस्था है। जिसमें प्रेयस के लिये श्रेयस की, लौकिक पक्ष के लिये अलौकिक पक्ष की अवमानना नहीं की गई है। साथ ही लौकिक साधनाओं की प्राथमिकता को भी अंगीकार कर विश्व कल्याण की कामना की गयी है।

''सर्वस्तुरतु दुर्गापि सर्वे भद्राणि पश्यतु।
सर्वः कामान वाप्नोति सर्वः सर्वत्र नन्दतु।।''

इस प्रकार कालिदास ने वैदिक संस्कृति का अनुसरण किंचित नूतनताओं के साथ किया है। जहाँ तक उनकी कृतियों में निहित शैक्षित तत्त्वों क विवेचना की बात है तो कालिदास की शिक्षा तथा उसके विभिन्न पक्ष प्राचीन भारतीय वैदिक शिक्षा पर ही आधारित प्राप्त होते हैं। कालिदास ने जिस आश्रमी, गुरुकुलीय शिक्षा को प्रदर्शित किया है तथा ब्रह्मचारी गुरु के स्वरूप एवं महत्ता को बतलाया है वह हमारी प्राचीनता का आदर्श है। पाठ्यक्रम, पाठन विधि, शैक्षिक उद्देश्य एवं अनुशासन यद्यपि कुल विशेषताओं के साथ प्रस्तुत किया गया है तथापि प्राचीनता की पूर्ण झलक इनमें विद्यमान है। शैक्षिक उद्देश्य जरूर कुछ भिन्नता लिये हुए हैं। कालिदास के शैक्षिक उद्देश्यों ने मानवीय व मनोवैज्ञानिकता, सामाजिकता तथा राजनीति का अद्भुत सम्मिश्रण कर एक नव दिशा प्रदान करने का कठिन प्रयास किया है। वे धर्म को भी महत्व देते हैं किन्तु पूर्व की भांति उनकी शिक्षा का आधार केवल अध्यात्म ही नहीं है। मानव की अभिलाषाओं, आकांक्षाओं तथा परिस्थितियों को संलग्न कर, जिन शैक्षिक उद्देश्यों की स्थापना कविवर ने की है वह निश्चित ही श्लाघनीय है। मानवता के विविध पक्षों से जिन शैक्षिक आदर्शों की अभिव्यंजना उनकी रचनाओं से ध्वनित होती है वह तत्कालीन उच्चादर्श, अनुशासन व नैतिक मूल्यों को स्वतः प्रमाणित कर देते हैं।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे जहाँ शिक्षा तटविहीन जल प्रपात की भांति बिखरी हुई है। वहाँ कालिदास की मान्यताओं, आदर्शों व व्यवस्थाओं का सम्यक् उपयोग एक दिशा प्रदान कर सकता है। अनुशासन की बिगड़ी स्थिति को शान्त करने में कालिदास की शैक्षिक धारा निश्चित रूप से सफल साबित हो सकती है। आज की प्रगतिशील धारा तथा विकसित युग में कालिदास के सम्पूर्ण शैक्षिक तत्त्वों को पूर्णतः ग्रहण करना तो समुचित नहीं है किन्तु अनुशासन, गुरु–शिष्य सम्बन्ध, नैतिक शिक्षा, राजनीतिक एवं सामाजिक शिक्षा को समाविष्ट किया जाना अवश्य हितकर है। कालिदास के इन उच्चादशा को आज की शिक्षा में समाहित करके ही हम इस ''बहुजनहिताय बहुजन सुखाय'' के सिद्धान्त को प्रतिष्ठापित कर सकते हैं और तभी ''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः'' को धरा पर चरितार्थ कर भारत विशद् के भाल पर सुशोभित हो सकेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. त्रिपाठी, डॉ0 बाबूराम : 'संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा (प्रथम संस्करण), 1973.
2. मिश्र, डॉ0 राजदेव : 'संस्कृत रूपकों के नायक' : नाट्यशास्त्रीयं विमर्श, प्रथम संस्करण, सन् 1988, नयी कालोनी बियावा रोड, फैजाबाद।
3. भारद्वाज, डॉ0 शिवप्रसाद : 'कालिदास दर्पण' : कालिदास साहित्य के सभी पक्षों पर विवेचनात्मक अध्ययन। – विश्वेश्वरानन्द विश्वबन्धु भारत भारतीय एवं संस्कृत अनुशीलन संस्थान पंजाब, विश्वविद्यालय, होशियारपुर, सन् 1983.
4. माथुर, डॉ0 एस0एस0 : 'शिक्षा सिद्धान्त', बारहवां संस्करण, 1981, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
5. रंगनाथ, बालकृष्ण रंगनाथपौत्रश्च : 'विक्रमोर्वशीय प्रकाशिका', निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, द्वितीय संस्करण 1897, माहेश्वर रामचन्द्रकाले कतांगलानुवाद टिप्पण्यादि सहितं, बम्बई 1898.
6. कौटिल्य : 'अर्थशास्त्र', पण्डित पुस्तकालय, काशी।